

Hindi / English / Gujarati

# गजेन्द्र मोक्ष





## गजेन्द्र मोक्ष क्या है ?

श्री शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित को यह कथा सुनाते हुए बताया था—

क्षीर सागर में त्रिकूट नामक पर्वत की तराई में एक गजेन्द्र (हाथी) निर्भय होकर रहता था। प्रारब्ध (कर्मों) की करनी थी कि वह एक अति बलवान ग्राह की पकड़ में आ गया। काफी समय तक दोनों में खींचातानी चलती रही, किंतु जब गजेन्द्र अपने बल पर उस ग्राह की पकड़ से न छूट सका तो उसने श्रीहरि की शरण ली।

श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध में यह गजेन्द्र के मोक्ष की कथा है। यह कथा अत्यंत रोचक तथा पुण्यदायी है। दूसरे अध्याय में ग्राह-गजेन्द्र युद्ध, तीसरे अध्याय में गजेन्द्र द्वारा गाए भगवान के स्तवन और

गजेंद्र मोक्ष का वर्णन है। गजेंद्र-ग्राह के पूर्वजन्म के इतिहास का वर्णन चौथे अध्याय में है।

गजेंद्र मोक्ष की यह पावन कथा प्राणिमात्र को सचेत करती है कि उठो, प्रभु की शरण में जाओ। जिस प्रकार गजेंद्र ग्राह के चंगुल में फंसा था, उसी प्रकार आज प्राणी मोह-ममता, लोभ-मात्सर्य के चंगुल में फंसा छटपटा रहा है। यह कलियुग में आई आस्था की कमी की ओर ही संकेत करता है। ऐसे प्राणियों को ईश्वर की शरण लेनी चाहिए।

गजेंद्र मोक्ष की कथा हमें ईश्वर की शक्ति का परिचय कराती है। यह कथा स्वर्ग तथा यश दिलाने वाली और सभी पापों का नाश करने वाली है।

श्री गजेंद्र मोक्ष का पाठ करने से लौकिक-पारमार्थिक महान संकटों और

विष्णुओं से छुटकारा मिलता है तथा निष्काम भाव होने पर प्राणी अज्ञान के जाल से निकलकर ज्ञान को और श्री भगवान को प्राप्त हो जाता है।

यह पाठ किसी नदी या सरोवर के तट पर जाकर ब्रह्म मुहूर्त के प्रारंभ में करना चाहिए। यदि आसपास किसी नदी-सरोवर की सुविधा न हो तो श्रीहरि विष्णु के मंदिर में बैठकर श्रद्धापूर्वक पाठ करें। पाठ का शुभारंभ किसी अमावस्या या पूर्णिमा को करना चाहिए। पाठ से पूर्व श्रीविष्णु भगवान का आवाहन कर चंदन-अक्षत, फल-फूल, धूप-दीप अर्पित कर पूजन करना चाहिए। यहां संस्कृत न जानने वाले साधकों के लिए उसका भावार्थ सरल हिंदी भाषा में दिया जा रहा है, ताकि वे पाठ का भरपूर आनंद तथा लाभ उठा सकें।

—प्रकाशक



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्रीमद्भागवतांतर्गत  
गजेंद्र कृत भगवद् स्तवन

## गजेंद्रमोक्ष

श्री शुक उवाच

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन (अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का बेटा परीक्षित) !

एवं व्यवसितो बुद्ध्या  
समाधाय मनो हृदि।  
जजाप परमं जाप्यं  
प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥

वह गजराज मन में भली-भांति सोच-विचारकर, मन को हृदय में स्थिर करके अर्थात् पूरी तरह भगवान श्रीहरि के चरणों

का ध्यान करते हुए अपने पूर्व जन्म में सीखकर कंठस्थ किए हुए सर्वोत्तम एवं बारंबार स्मरणीय इस स्तोत्र का पाठ बड़े दीन भाव से करने लगा— ॥ १ ॥

॥ गजेंद्र उवाच ॥

ॐ नमो भगवते तस्मै  
यत एतच्चिदात्मकम् ।  
पुरुषाद्यादि - बीजाय  
परेशाद्याभि-धीमहि ॥

गजेंद्र ने (मन ही मन) कहा—

जिनकी चेतना को पाकर जड़ जगत के शरीर और मन आदि भी चेतन हो जाते हैं, अर्थात् प्राणवान होकर गतिशील हो उठते हैं, जिसे ॐ शब्द से अलंकृत किया जाता है और जो प्रकृति के कण-कण में विद्यमान है, जो सर्व समर्थ है, उस परमेश्वर को कोटि-कोटि नमस्कार है ।



यस्मिन्निदं यतश्चेदं  
येनेदं च इदं स्वयम्।  
योऽस्मात्परस्माच्च पर-  
स्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥

जिसके बल पर संपूर्ण ब्रह्मांड टिका है  
(अर्थात् जिससे इस संपूर्ण चराचर जगत  
की स्थिति है), जिसमें से इस संपूर्ण ब्रह्मांड  
की उत्पत्ति हुई है, जिसकी शक्ति से यह  
संसार चलायमान है और जो विभिन्न नाम,  
रूपों तथा रंगों में इसमें विद्यमान होकर  
भी इसमें लिप्त नहीं है, जो स्वयं रची इस  
प्रकृति के विधि-विधान और नियमों से  
सर्वथा परे है, जो सर्वोच्च और श्रेष्ठ है,  
तथा जो स्वयं की इच्छा से तरह-तरह के  
अवतार लेने वाला है, मैं उस परमात्मा  
की शरण में हूँ ॥ ३ ॥



यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं  
क्वचिद्विभातं क च तत्तिरोहितम् ।  
अविद्धवृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते  
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥

जो अविनाशी पुरुष अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा अपना ही रूप इस सृष्टि में रचता है, अपनी ही माया से प्रकट होता है तथा प्रलयकाल में सबमें व्यापक रहकर भी निराकार होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से नहीं दीखता, शास्त्र अद्भुत गुणों के कारण उसी को सृष्टि का रचयिता बताते हैं । कहीं भी आसक्ति न रखने के कारण जो परमात्मा सबमें निरपेक्ष (पक्षपात से रहित) भाव रखता है और सभी घटनाओं का दर्शक बना हुआ है तथा जो आंख आदि इंद्रियों का भी परम प्रकाशक है, ऐसा वह प्रभु मेरी रक्षा करे ॥ ४ ॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो  
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।  
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं  
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥

समय की गति से संपूर्ण लोकों और ब्रह्मा-  
विष्णु आदि अधिष्ठाता देवताओं (लोक-  
पालों) के पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज,  
वायु और आकाश) में प्रवेश कर जाने पर  
और पंचभूतों से लेकर महत् तत्त्व तक  
समस्त कारणों (गंध, रूप, रस इत्यादि)  
उनके परम कारण रूप प्रकृति में लीन हो  
जाने पर उस समय दुर्ज्ञेय तथा अपार  
अंधकार रूप प्रकृति ही बची रहती है,  
उस अंधकार के परे अपने परम धाम में  
जो सर्वव्यापी ईश्वर सब ओर प्रकाशित  
रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥



न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु—  
 र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तूमीरितुम् ।  
 यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो  
 दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥  
 जिस परमात्मा की लीला को (समय-  
 समय पर विभिन्न नाम-रूपों से अवतरित  
 होने—कभी मत्स्य, कभी कूर्म, कभी  
 वाराह, कभी नृसिंह तो कभी वामन आदि)  
 बड़े-बड़े देवता और ऋषिगण भी उसी  
 प्रकार नहीं जान पाते, जैसे साधारण बुद्धि  
 वाले मनुष्य विभिन्न रूप बदलने वाले  
 अभिनेता के वास्तविक रूप को नहीं जान  
 पाते, (अर्थात् लीलाओं का वर्णन मन बुद्धि  
 आदि के वर्णन से परे है) ऐसे विलक्षण  
 चरित्र वाले, निर्वचन से परे भगवान मेरी  
 रक्षा करें, मैं उनकी शरण में हूँ ॥ ६ ॥

दिदृक्ष्वो यस्य पदं सुमङ्गलं  
 विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।  
 चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने  
 भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥

आसक्ति से सर्वथा रहित, संपूर्ण प्राणियों  
 में आत्मभाव रखने वाले, परम तपस्वी,  
 सबके हितैषी और सज्जन स्वभाव वाले  
 मुनिगण जिनके परम मंगलकारी स्वरूप  
 का दर्शन पाने की इच्छा से वन में रहकर  
 अखंड ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतों  
 का पालन करते हैं, वे प्रभु ही अब मेरे  
 एकमात्र सहारा हैं ॥ ७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा  
 न नामरूपे गुणदोष एव वा ।  
 तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः  
 स्वमायया तान्यनुकालमुच्छति ॥

जिस परम पिता का कर्मों की गति अनुसार न तो जन्म होता है तथा जो न ही तुच्छ प्राणियों के गेह या मद के वशीभूत कर्म करता है, जिसके निर्गुण निराकार रूप का न कोई नाम है, न ही रूप-आकृति और जो समय-समय पर जगत की उत्पत्ति और संहार के लिए विभिन्न नाम-रूपों में अवतार ग्रहण करता है— ॥ ८ ॥

तस्मै नमः परेशाय

ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

अरूपायोरु-रूपाय

नम आश्चर्यकर्मणे ॥

उस सर्व शक्तिमान परमात्मा रूपी परब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार है । उन प्रकृति से रचित आकार से शून्य एवं अनेकों आकार रूप अद्भुत कर्मा प्रभु को बारंबार नमस्कार है ॥ ९ ॥



नमः आत्मप्रदीपाय  
साक्षिणे परमात्मने ।  
नमो गिरां विदूराय  
मनसश्चेतसामपि ॥

अपनी इच्छा से प्रकाशित अर्थात् प्रकट होने वाले, सर्व साक्षी परमात्मा को नमस्कार है । मन, वचन एवं चित्तवृत्तियों से सर्वथा परे रहने वाले प्रभु को अनेकों बार नमस्कार है ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय  
नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।  
नमः कैवल्यनाथाय  
निर्वाण-सुखसंविदे ॥

विवेकी पुरुष सात्त्विक विचारों की प्रधानता के कारण निवृत्ति धर्म के आचरण



से जिस प्रभु का दर्शन करते हैं, मोक्ष रूपी  
आनंद को देने वाले तथा मोक्ष सुख की  
अनुभूति रूप (परमानंदरूप) भगवान को  
मेरा नमस्कार है ॥ ११ ॥

नमः शान्ताय घोराय  
मूढाय गुणधर्मिणे ।  
निर्विशेषाय साम्याय  
नमो ज्ञानधनाय च ॥

जो सत्त्वगुण को स्वीकार करके शांत है,  
जो रजोगुण को स्वीकार करके घोर है  
तथा तमोगुण को स्वीकार करके मूढ़ से  
दिखने वाले उन भेद रहित, सदा सद्भाव  
से रहने वाले, ज्ञान ही जिनका आदि,  
मध्य व अंत रूप है, उस प्रभु को नमस्कार  
है (श्रीविष्णु का यहां 'ज्ञानम्' के रूप में  
प्रतिपादन है) ॥ १२ ॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं  
सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।  
पुरुषायात्म - मूलाय  
मूलप्रकृतये नमः ॥

शरीर, इंद्रिय आदि से रचित समस्त प्राणियों  
के रहस्यों के ज्ञाता, सबके स्वामी और  
समस्त कार्यों के संपन्न होते समय  
कालरूप से साक्षी परम पिता को नमस्कार  
हैं। सबके हृदय में वास करने वाले, प्रकृति  
के भी परम कारण किंतु स्वयं कारण  
रहित प्रभु को नमस्कार है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रिय - गुणद्रष्टे  
सर्वप्रत्यय - हेतवे ।  
असताच्छाययोक्ताय  
सदाभासाय ते नमः ॥

समस्त इंद्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा आंख, कान, नाक, त्वचा एवं जिह्वा तथा कर, पद, जिह्वा, गुप्तेन्द्रियों एवं उनके स्वरूप, गंध, शब्द, स्पर्श तथा रस के ज्ञाता, समस्त प्रतीतियों के कारण रूप, समस्त जड़ (अचल और चेतन) ऐसी चराचर सृष्टि तथा सबकी मूलभूता अविद्या के द्वारा सूचित होने वाले तथा सभी प्राणियों में अविद्यारूप से भासने वाले प्रभु आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय  
निष्कारणायद्भुतकारणाय ।  
सर्वांगमाम्नायमहार्णवाय  
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥

समस्त ब्रह्मांड के कारण होकर भी स्वयं किसी भी तत्व के कारण न रचे जाने



वाले तथा कारण होने पर भी परिणाम रहित होने के कारण अन्य कारणों से विलक्षण कारण रूप परमात्मा आपको अनेकों बार नमस्कार है। समस्त वेदों तथा सभी शास्त्रों के परम तात्पर्य तथा श्रेष्ठ पुरुषों की परमगति भगवान को नमस्कार है ॥ १५ ॥

गुणा-रणिच्छन्न-चिदूष्मपाय  
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।  
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम—  
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥

जो परमात्मा त्रिगुण (सत, रज एवं तम) रूपी काष्ठ में छिपी हुई ज्ञान रूपी अग्नि है, इन गुणों में हलचल होने पर जिनके मन में सृष्टि रचने की भावना जाग जाती है तथा आत्मतत्त्व की भावना के द्वारा करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मों के

विधि-विधान बताने वाले शास्त्र से ऊपर है। त्रिगुण के प्रभाव से मुक्त साधु जनों के हृदय में जो चैतन्य शक्ति के रूप से प्रकाशित होते हैं, ऐसे श्री प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय  
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत—  
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥

मुझ जैसे शरण में आए हुए अविद्या की माया से मोहित जीव की अविद्या रूप फांस को सदा-सदा के लिए पूरी तरह काट देने वाले, अत्यधिक दयालु प्रभु को मेरा नमस्कार है। अपने अंश से संपूर्ण जीवों के मन में अंतर्धामी रूप से प्रकट रहने वाले सबके शासक, अनंत परमात्मा प्रभु, आपको मेरा नमस्कार है ॥ १७ ॥



आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-  
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।  
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय  
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥

देह, पुत्र-पुत्री, मित्रादि एवं धन-संपत्ति  
तथा कुटुंबियों से आसक्ति रखने वाले  
प्राणियों को कठिनाई से प्राप्त होने वाले  
तथा सब कुछ त्याग कर मोक्ष की इच्छा  
वाले प्राणियों द्वारा अपने हृदय में निरंतर  
चिंतित, ज्ञान स्वरूप, सर्व समर्थ भगवान  
को मेरा नमस्कार है ॥ १८ ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा  
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।  
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं  
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥



जिस परम पिता को धर्म, मनवांछित सांसारिक पदार्थ, धन एवं मोक्ष की कामना से भजने वाले प्राणी अपनी मनचाही गति को प्राप्त कर लेते हैं तथा इनके अतिरिक्त जो इन सबको बिन मांगे ही अनेकों दुर्लभ पदार्थ देते हैं तथा जन्म-मरण रहित अपने पार्षद का शरीर भी अपने धाम में साथ में निवास करने के लिए दे देते हैं, वे अतिशय दयालु प्रभु मुझे इस विपत्ति से सदा के लिए उबार लें ॥ १९ ॥

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं  
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।  
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं  
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥

जिस परम पिता के अनन्य भक्त, जो एकमात्र उन श्री भगवान के ही शरणागत

हैं तथा जिनके लिए धर्म-अर्थ आदि सभी पदार्थ व्यर्थ हैं, अर्थात् जो कुछ भी नहीं चाहते, बल्कि श्री हरि की परम कल्याणकारी और अत्यंत अद्भुत लीलाओं व गुणों का गान करते हुए परमानंद के समुद्र में गोते लगाते रहते हैं ॥ २० ॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश—

मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर—

मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥

उन अविनाशी, सर्वव्यापी, सर्वश्रेष्ठ, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के भी शासक, अभक्तों के लिए कहीं भी प्रकट होने वाले किंतु भक्ति योग द्वारा प्राप्त करने योग्य, अत्यंत निकट होने पर भी अपनी माया के कारण अत्यंत दूर प्रतीत होने वाले, नेत्रादि इंद्रियों

के कारण जिनका दर्शन अति दुर्लभ है,  
अंतरहित किंतु सबके आदि कारण और  
जो सब प्रकार से परिपूर्ण हैं, उन श्री  
भगवान की मैं स्तुति करता हूं ॥ २१ ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा  
वेदा लोकाश्चराचराः ।

नामरूप - विभेदेन

फलव्या च कलया कृताः ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवता, चारों वेद तथा  
संपूर्ण चराचर जीव नाम और आकृति के  
भेद से जिनके क्षुद्र अंश मात्र (संकल्प  
मात्र) से रचे गए हैं ॥ २२ ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो  
निर्यान्तिसंयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।

तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो  
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥



जिस प्रकार प्रचंड अग्नि से लपटें तथा सूर्य से किरणें अपने आप निकलती हैं और फिर उन्हीं (अग्नि और सूर्य) में जाकर विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार बुद्धि, मन तथा इंद्रियां एवं नाना योनियों के शरीर—यह गुणमय प्रपंच जिन स्वयं प्रकाशित परमात्मा से प्रकट होता है और पुनः उन्हीं में लीन हो जाता है ॥ २३ ॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्  
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।  
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्  
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥

वह परम पिता परमात्मा न तो देव है, न असुर, न मनुष्य है न अन्य (पशु-पक्षी आदि) किसी योनि का प्राणी है, न स्त्री है, न पुरुष और न ही नपुंसक । न वह

कोई ऐसा जीव है, जिसका इन तीनों ही श्रेणियों में समावेश न हो सके। न वे गुण हैं, न कर्म। न कार्य हैं न कारण। अंततः यह सब कुछ जो नहीं है, उसके बाद भी जो कुछ बचता है, वही उस परमात्मा का स्वरूप है और वे ही सबकुछ हैं (अर्थात् वही यह सबकुछ है, जो दिखाई दे रहा है) — ऐसे परमात्मा मेरे उद्धार के लिए आविर्भूत हों ॥ २४ ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि—  
 मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।  
 इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव—  
 स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥

मैं इस ग्राह (मगरमच्छ) के चंगुल से छूटकर भी जीवित रहना नहीं चाहता, क्योंकि अंदर और बाहर सभी तरफ से



अविद्या के द्वारा ढके हुए इस हाथी के शरीर से मुझे क्या लेना है, मुझे इससे अब कोई आसक्ति नहीं रह गई है। मैं तो आत्मा के प्रकाश को ढक देने वाले उस अज्ञान की निवृत्ति (छुटकारा) चाहता हूँ, जिसका कालक्रम से अपने-आप नाश नहीं होता, अपितु आपकी कृपा या ज्ञानोदय से ही होता है ॥ २५ ॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वं  
 विश्वं विश्ववेदसम् ।  
 विश्वात्मानमजं ब्रह्म  
 प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥

इस प्रकार मोक्ष का अभिलाषी मैं विश्व के रचयिता, स्वयं विश्व के रूप में दिखाई पड़ने वाले तथा विश्व से सर्वथा परे, विश्व को खिलौना बनाकर खेलने वाले,



विश्वभव में आत्मरूप से व्याप्त, अजन्मा, सर्व व्यापक एवं पाने योग्य वस्तुओं में सबसे श्रेष्ठ ( जिसे प्राप्त करने के बाद और कुछ पाने की कामना नहीं रह जाती ) — ऐसे परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ, मैं उनकी शरण में हूँ ॥ २६ ॥

योग-रन्धित-कर्माणो  
हृदि योगविभाविते ।  
योगिनो यं प्रपश्यन्ति  
योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥

जिन साधकों ने भगवत भक्ति रूप योग के द्वारा कर्मों को जला डाला है, वे योगीजन उसी योग के द्वारा शुद्ध किए हुए अपने हृदय में जिन्हें प्रकट हुआ देखते हैं, उन योगियों के ईश्वर श्री भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग—  
 शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।  
 प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तय  
 कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥

जिस परमात्मा की त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज, तम रूप) शक्तियों का राग रूप वेग असह्य है (क्योंकि आत्मबल का अहंकार करने वालों को यह पल भर में उखाड़ फेंकता है) । जो समस्त ज्ञानेंद्रियों-कर्मेन्द्रियों के ग्राह्य विषय के रूप में प्रतीत होता है, जिनकी इंद्रियां विषयों में ही रची-बसी रहती हैं (अर्थात् जो विषय-भोगों में लिप्त हैं), ऐसे लोगों को जिनका मार्ग भी मिलना असंभव है, उन शरण में आने वालों के भी रक्षक एवं जो अपार शक्तिशाली हैं— ॥ २८ ॥

नायं वेद स्वमात्मानं  
 यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।  
 तं दुरत्ययमाहात्म्यं  
 भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥

जिनकी अविद्या नामक शक्ति के कार्यरूप  
 अहंकार से ढके हुए अपने स्वरूप को  
 यह जीव जान नहीं पाता, मैं उन अपार  
 महिमा वाले (लोगों को सम्मोहित करने  
 वाले) भगवान की शरण में हूँ ॥ २९ ॥

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं  
 ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।  
 नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्  
 तन्नखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥  
 शुकदेवजी बोले कि हे राजन ! इस प्रकार  
 भगवान के भेदरहित निराकार स्वरूप का



वर्णन करने पर भी जब मगर के चंगुल में फंसे गजराज को छुड़ाने ब्रह्मादि कोई भी देवता नहीं आए, तब साक्षात् हरि, जो सबके आत्मा होने के कारण सर्वदेव स्वरूप हैं, वे वहां प्रकट हो गए ॥ ३० ॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः  
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान—

श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥

उस गजराज (हाथी) को ग्राह (मगर) के चंगुल में फंसा देखकर तथा उसकी करुण स्तुति सुनकर सुदर्शन चक्रधारी, जगत के आधार भगवान् इच्छारूप वेग वाले गरुड़ जी की पीठ पर सवार होकर तत्काल उस स्थान (सरोवर) पर पहुंच गए, जहां वह हाथी (ग्राह के चंगुल में फंसा) था ॥ ३१ ॥

सोऽन्तस्सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो  
 दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।  
 उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-  
 न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥

सरोवर के भीतर शक्तिशाली मगरमच्छ  
 द्वारा पकड़े जाने पर मृत्यु के भय से  
 अत्यधिक भयभीत और ग्राह के तेज दांतों  
 से लगे घावों से दुखी (अपने स्वजनों के  
 परित्याग से वेदना में डूबे) गजराज ने  
 जब आकाश मार्ग से गरुड़ की पीठ पर  
 बैठे सुदर्शन चक्रधारी श्रीहरि को आते  
 देखा तो अपनी सूंड उठाकर, जिसमें उसने  
 कमल पकड़ा हुआ था, बड़ी कठिनाई से  
 बोला—‘सर्व पूज्य भगवान नारायण !  
 आपको प्रणाम है ।’ ॥ ३२ ॥



तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य  
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।  
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं  
सम्पश्यतां हरिमूमुचदेस्त्रियाणाम् ॥

गजराज को शारीरिक और मानसिक रूप से पीड़ित देखकर कभी न जन्म लेने वाले श्रीहरि एकाएक गरुड़ को छोड़कर उस सरोवर के किनारे आए और दया से प्रेरित होकर ग्राह सहित उस गजराज को तत्काल सरोवर से बाहर निकाल लाए (ताकि ग्राह की शक्ति कम हो जाए तथा गजराज में आत्मबल आ जाए), उसके बाद देवताओं के देखते-देखते अपने शत्रुहारी सुदर्शन चक्र से ग्राह का मुंह चीरकर उन्होंने गजराज को उसके चंगुल से उबार लिया ॥ ३३ ॥



## अथ श्रीविष्णु कवच

श्री नारद उवाच

भगवन्सर्व - धर्मज्ञ  
कवचं यत्प्रकाशितम् ।  
त्रैलोक्य मङ्गलं नाम  
कृपया कथय प्रभो ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र  
कवचं परमाद्भुतम् ।  
नारायणेन कथितं  
कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥  
ब्रह्मणा कथितं मह्यं  
परं स्नेहाद्वदामि ते ।  
अति गुह्यतरं तत्त्वं  
ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा  
 सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।  
 यद्धृत्वा पठनात्पाति  
 महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ॥  
 पठनाद्धारणाच्छम्भुः  
 संहर्ता सर्वमंत्रवित् ।  
 त्रैलोक्यजननी दुर्गा  
 महिषादिमहासुरान् ॥  
 वरदृप्तान् जघानैव  
 पठनाद्धारणाद्यतः ।  
 एवमिन्द्रादयः सर्वे  
 सर्वैश्वर्यम् अवाप्नुयुः ॥  
 इदं कवचमत्यन्तं  
 गुप्तं कुत्रापि नो वदेत् ।  
 शिष्याय भक्तियुक्ताय  
 साधकाय प्रकाशयेत् ॥

शठाय परशिष्याय  
दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।

विनियोग :

त्रैलोक्य-मङ्गलस्यास्य  
कवचस्य प्रजापतिः ।  
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री  
देवो नारायणः स्वयम् ।  
धर्मार्थकाम - मोक्षेषु  
विनियोगः प्रकीर्तितः ॥

प्रणवो मे शिरः पातु नमोनारायणाय च  
भाल मे नेत्रयुगलमष्टाणोभक्तिमुवितदः ॥

क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मं  
चैकाक्षरस्सर्वमोहनः ।  
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं  
गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥

गोपीजनपदं वल्ल-  
 भाय स्वाहाननं मम ।  
 अष्टादशाक्षरो मन्त्रः  
 कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥  
 गोपीजनपदं वल्ल-  
 भाय स्वाहा भुजद्वयम् ।  
 क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामालाङ्गाय  
 नमः स्कन्धौ दशाक्षरः ॥  
 क्लीं कृष्णः क्लीं करौ पायात्  
 क्लीं कृष्णायाङ्गतोवतु ।  
 हृदयं भुवनेशानी क्लीं कृष्णाय  
 क्लीं स्तनौ मम ॥  
 गोपालायाग्निजायान्तं  
 कुक्षियुग्मं सदावतु ।  
 क्लीं कृष्णाय सदा पातु  
 पार्श्वयुग्ममनुत्तमः ॥

कृष्णागोविन्दकौ कट्यां  
 स्मराद्यौ डेयुतो मनुः ।  
 अष्टाक्षरः पातु नाभिं  
 कृष्णोति द्व्यक्षरोऽवतु ॥  
 पृष्ठं क्लीं कृष्णाकङ्कालं  
 क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः ।  
 सक्थिनी सततं पातु  
 श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाठद्वयम् ॥  
 ऊरू सप्ताक्षरः पाया-  
 त्रयोदशाक्षरीऽवतु ।  
 श्रीं ह्रीं क्लीं पदतोगोपी  
 जनवल्लभदं ततः ॥  
 भाय स्वाहेति पायुं वै  
 क्लीं ह्रीं श्रीं सदशार्णकः ।  
 जानुनी च सदा पातु  
 ह्रीं श्रीं क्लीं च दशाक्षरः ॥





त्रयोदशाक्षरः पातु  
 जंघे चक्राद्युदायुधः ।  
 अष्टादशाक्षरो ह्रीं श्रीं  
 पूर्वको विंशदर्णकः ॥  
 सर्वाङ्गं मे सदा पातु  
 द्वारकानायको बली ।  
 नमो भगवते पश्चा-  
 द्वासुदेवाय तत्परम् ॥  
 ताराद्यो द्वादशाणोयं  
 प्राच्यां मां सर्वदावतु ।  
 श्रीं ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु  
 क्लीं ह्रीं श्री षोडशार्णकः ॥  
 गदाद्युदायुधो विष्णु-  
 र्मामग्नेर्दिशि रक्षतु ।  
 ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मंत्रो  
 दक्षिणे मां सदावतु ॥

तारो नमो भगवते  
 रुक्मिणीवल्लभाय च ।  
 स्वाहेति षोडशार्णोयं  
 नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥  
 क्लीं हृषीकेपदेशाय  
 नमो मां वारुणेऽवतु ।  
 अष्टादशार्णः कामान्तो  
 वायव्ये मां सदावतु ॥  
 श्रीं मायाकामकृष्णाय  
 ह्रीं गोविन्दाय द्विठो मनुः ।  
 द्वादशार्णात्मको विष्णु-  
 रुत्तरे मां सदावतु ॥  
 वाग्भवं कामकृष्णाय  
 ह्रीं गोविन्दाय तत्परम् ।  
 श्रीं गोपीजनवल्लभान्ते  
 भाय स्वाहा हसौ स्वतः ॥

द्वाविंशत्यक्षरो मंत्रो  
 मामैशान्ये सदावतु ।  
 कालियस्य फणामध्ये  
 दिव्यनृत्यं करोति तम् ॥  
 नमामि देवकीपुत्रं  
 मृत्यराजानम - च्युतम् ।  
 द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो  
 -ऽप्यधो मां सर्वदावतु ॥  
 कामदेवाय विद्महे  
 पुष्पबाणाय धीमहि ।  
 तन्नोऽनङ्गः प्रचोदया-  
 देषामां पातु चोर्ध्वतः ॥  
 इति ते कथितं विप्र  
 ब्रह्म - मन्त्रौघ - विग्रहम् ।  
 त्रैलोक्यमङ्गलं नाम  
 कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं  
 नारायण - मुखाच्छ्रुतम् ।  
 तव स्नेहान्मयाख्यातं  
 प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥  
 गुरुं प्रणम्य विधिवत्-  
 कवचं प्रपठेत्ततः ।  
 सकृद्द्वि - स्त्रिर्यथाज्ञानं  
 सोऽपि सर्वतपोमयः ॥  
 मंत्रेषु सकलेष्वेव  
 देशिको नात्र संशयः ।  
 शतमष्टोत्तरं चास्य  
 पुरश्चर्याविधिः स्मृतिः ॥  
 हवनादीन् दशांशेन  
 कृत्वा तत्साधयेद्ध्रुवम् ।  
 यदि स्यात्सिद्धकवचो  
 विष्णुरेव भवेत्स्वयम् ॥

मंत्रसिद्धिः भवेत्तस्य  
पुरश्चर्या - विधानतः ।  
स्पृष्ट्वा मुद्भूय सततं  
लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥  
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा  
मूलेनैव पठेत्सकृत् ।  
दशवर्ष सहस्राणां  
पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥  
भूर्ज विलिख्य गुटिकां  
स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।  
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ  
सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥  
अश्वमेध - सहस्राणि  
वाजपेयशतानि च ।  
महादानानि यान्येव  
प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥



कलां नार्हन्ति तान्येव  
सकृदुच्चारणा - ततः ।  
कवचस्य प्रसादेन  
जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥  
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव  
त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।  
इदं कवचमज्ञात्वा  
यजेद्यः पुरुषोत्तमम् ।  
शतलक्षप्रजसोपि  
न मंत्रस्तस्य सिद्ध्यति ॥  
इति विष्णुकवचं समाप्तम् ।







## दशावतारस्तोत्रम्

नमोऽस्तु नारायण-मन्दिराय  
नमोऽस्तु हारायणकन्धराय ।  
नमोऽस्तु पारायण-चर्चिताय  
नमोऽस्तु नारायण तेऽर्चिताय ॥  
नमोऽस्तु मत्स्याय लयाब्धिगाय  
नमोऽस्तु कूर्माय पयोऽब्धिगाय ।  
नमो वराहाय धराधराय  
नमो नृसिंहाय परात्पराय ॥  
नमोऽस्तु शुक्राश्रयवामनाय  
नमोऽस्तु विप्रोत्सवभार्गवाय ।  
नमोऽस्तु सीताहितराघवाय  
नमोऽस्तु पार्थस्तुतयादवाय ॥  
नमोऽस्तु बुद्धाय विमोहकाय  
नमोऽस्तु ते कल्किपदोदिताय ।

नमोऽस्तु पूर्णामितसद्गुणाय  
 समस्तनाथाय हयाननाय ॥  
 करस्थ-शङ्खोल्लसदक्षमाला  
 प्रबोध - मुद्राभयपुस्तकाय ।  
 नमोऽस्तु वक्त्रोद्गिरदागमाय  
 निरस्तहेयाय हयाननाय  
 रमासमाकारचतुष्टयेन  
 क्रमाच्चतुर्दिक्ष निषेविताय ।  
 नमोऽस्तु पार्श्वद्वयगद्विरूप-  
 श्रियाभिषिक्ताय हयाननाय ॥  
 किरीट-पट्टाङ्गट-हार-काञ्ची-  
 सुरत्न - पीताम्बर - नूपुराद्यैः ।  
 विराजिताङ्गाय नमोऽस्तु तुभ्यं  
 सुरैः परीताय हयाननाय ॥  
 विदोषि - कोटीन्दुनिभ - प्रभाय  
 विशेषतो मध्वमुनिप्रियाय ।

विमुक्तवन्द्याय नमोऽस्तु विष्वग्  
विधूतविघ्नाय हयाननाय ॥  
नमोऽस्तु शिष्टेष्टद-वादिराज-  
कृताष्टका - भिष्टु - तचेष्टिताय ।  
दशावतारै स्त्रिदशार्थदाय  
निशेशबिम्बस्थ - हयाननाय ॥  
इति दशावतारस्तोत्रं संपूर्णम् ॥



## विष्णो शतनामस्तोत्रम्

ॐ वासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम् ।  
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवक्षं गरुडध्वजम् ॥  
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम् ।  
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम् ॥  
नारायणं गदाध्यक्षं गोविन्दं कीर्तिभाजनम् ।  
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम् ॥  
वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम् ।  
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम् ॥  
वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम् ।  
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दिकेश्वरम् ॥  
रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम् ।  
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मङ्गलं मङ्गलायुधम् ॥  
दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम् ।  
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वासुदेवजम् ॥  
हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।

सकलं निष्फलं शुद्ध निर्गुणं गुणशाश्वतम् ॥  
 हिरण्यतनुसङ्काशं सूर्यायुतसमप्रभम् ।  
 मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम् ॥  
 ज्योतिरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम् ।  
 सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ॥  
 ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम् ।  
 योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम् ॥  
 ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम् ।  
 इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम् ॥  
 व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेद् वैष्णवो नरः ॥  
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 चान्द्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च ॥  
 गवां लक्षसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः ।  
 अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥

इति विष्णुपुराणे  
 विष्णुशतनामस्तोत्रं संपूर्णम् ॥



## आरती श्री विष्णुजी की

ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।  
भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे ॥  
जो ध्यावे फल पावे, दुख विनसे मन का।  
सुख संपत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूं मैं किसकी ।  
 तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी ॥  
 तुम पूरण परमात्मा, तुम अंतर्दामी ।  
 पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥  
 तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता ।  
 मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥  
 तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती ।  
 किस विधि मिलूं दयामय, तुमको मैं कुमती ॥  
 दीन बंधु दुःखहर्ता, तुम रक्षक मेरे ।  
 करुणा हस्त उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥  
 विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।  
 श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥  
 श्री जगदीश जी की आरति, जो कोई नर गावे ।  
 कहत शिवानंद स्वामी, सुख संपत्ती पावे ॥

## प्रार्थना

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।  
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥  
संसारसागरं घोरमनन्तं क्लेशभाजनम् ।  
त्वमेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ॥  
अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन्महाभये ।  
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने शरणं परम् ॥  
कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत ।  
शरीरेऽपि गतौ चापि वर्तते मे महद्भयम् ॥  
त्वत्पादकमलादन्यन्न मे जन्मान्तरेष्वपि ।  
निमित्तं कुशलस्यास्ति येन गच्छामि सद्गतिम् ॥  
दुर्गतावपि जातायां त्वं गतिस्त्वं मतिर्मम ।  
यदि नाथं च विज्ञेयं तावतास्मि कृती सदा ॥  
आकामकलुषं चित्तं मम ते पादयोः स्थितम् ।  
कामये वैष्णत्वं तु सर्वजन्मसु केवलम् ॥